

भारत सरकार

भारत

का

विधि आयोग

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 और संबंधित
उपबंधों का संशोधन

रिपोर्ट सं. 238

दिसंबर, 2011

न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी

(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)

Justice P. V. REDDI

(Former Judge, Supreme Court of India)

अध्यक्ष

भारत का विधि आयोग

Chairman

Law Commission of India

नई दिल्ली/New Delhi

दूरभाष/Tele : 23019465 (R)

23384475 (O)

फैक्स/Fax : 23792745 (R)

30 दिसंबर, 2011

प्रिय माननीय मंत्री सलमान खुर्शीद जी

इसके साथ संलग्न रिपोर्ट सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 से संबंधित है। उच्चतम न्यायालय ने एफकोन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर [(2010) 8 एस. सी. सी. 24] मामले में कहा था कि धारा 89 में प्रारूपण संबंधी बहुतसी त्रुटियां हैं और उस धारा में ऐसे संशोधनों का सुझाव दिया था जिन पर भारत के विधि आयोग द्वारा विचार किया जा सकता है। अतः विधि आयोग ने धारा 89 में, जो सिविल मामलों में विवाद समाधान को सुगम बनाने के लिए अतिमहत्व की है, कमियों को दूर करने और उसे अधिक सादा और सीधा बनाने के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 में और साथ ही आदेश 10 के नियम 1-क से नियम 1-ग तक में संशोधनों का प्रस्ताव किया है। इसके अतिरिक्त न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 16 में भी संशोधन का सुझाव दिया गया है। यथा प्रस्तावित संशोधित उपबंध रिपोर्ट के पैरा 6.2, 6.3 और 6.4 में है।

सादर और शुभकामनाओं सहित

हृदय

(वी. पी. रेड्डी)

श्री सलमान खुर्शीद जी

माननीय विधि और न्याय मंत्री

शास्त्री भवन,

नई दिल्ली

कार्यालय : भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली-110 001

Office : I.L.I Building, Bhagwandas Road, New Delhi- 110 001

निवास : 1 जनपथ, नई दिल्ली - 110 011

Residence : 1, Janpath, New Delhi 110 011

E-mail : pv-reddi@yahoo.co.in

**सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 और संबंधित
उपबंधों का संशोधन**

विषय-सूची

	पृष्ठ सं.
1. प्रस्तावना	4-5
2. धारा 89 और उसकी स्कीम का विश्लेषण	5-11
3. धारा 89 की पृष्ठ भूमि	12-14
4. धारा 89 में प्रारूपण संबंधी त्रुटियां - एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामला	15-18
5. परिवर्तन जिन पर मोटे रूप से विचार किया गया	19-25
6. प्रस्तावित संशोधन	26-31
7. सिफारिशें	31
 उपाबंध - 1 माध्यस्थम् सुलह अधिनियम की धारा 73(1) और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के उद्धरण	 32-33
 उपाबंध - 2 एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में निर्णय के पैरा 43 और पैरा 44	 34-38

1. प्रस्तावना

1.1 विभिन्न कारणों से सिविल न्यायालयों में विवादों की बहुलता और उनके लंबित होने से यह अव्यवहार्य हो गया है कि मामलों का उचित समय के भीतर निपटारा किया जाए। भारी बोझ से दबी हुई न्याय पद्धति उससे की जाने वाली भारी मांगों को, जो अधिकांशतः उसके नियंत्रण से परे कारणों से है, पूरा करने की स्थिति में नहीं है। शीघ्र न्याय आकस्मिक हो गया है, यद्यपि प्रति न्यायाधीश मामलों का निपटारा करने की दर देश में काफी अच्छी है। वैकल्पिक विवाद समाधान (संक्षेप में "वै. वि. सं. ") पद्धति को स्थान देने की आवश्यकता अत्यधिक अनुभव की जा रही है जिससे कि न्यायालय अपने डॉकिट से कुछ मामलों को हटा सकें। वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति कुछ देशों में, विशेष रूप से अमेरिका में, जहां बहुत सा विवाद वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के माध्यम से, मामले के विचारण के लिए जाने से पूर्व, तय कर दिया जाता है, बहुत सफल रही है।

1.2 भारत के संविधान का अनुच्छेद 39-क (1976 में अधिनियमित) इस बात पर जोर देता है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या रक्रीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा। इस प्रकार समाज के सभी वर्गों के लिए न्याय तक सुलभ पहुंच और गरीब तथा जरूरतमंद व्यक्तियों के लिए विधिक सहायता का उपबंध और स्वतंत्र न्यायपालिका द्वारा उचित समय के भीतर न्याय का दिया जाना हमारे सांविधानिक लोकतंत्र के और उस विषय के लिए किसी भी उन्नतिशील लोकतंत्र के वांछित उद्देश्य हैं।

1.3 हमारे देश में माध्यस्थ और बीचबचाव बहुत समय से प्रचलित रहे हैं। माध्यस्थ मूल रूप से विभिन्न अधिनियमितियों में अंतर्विष्ट उपबंधों से, जिनके अंतर्गत सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध भी हैं, शासित होता था। प्रथम भारतीय माध्यस्थ अधिनियम को 1899 में अधिनियमित किया गया था, जिसे माध्यस्थ अधिनियम, 1940 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था और जिसे पुनः 1996 के माध्यस्थ और सुलह अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। अनौपचारिक प्रकृति के

बीचबचाव को अतिप्राचीन काल से छोटे-छोटे विवादों को हल करने के लिए ग्राम स्तर पर अपनाया जाता रहा था । उन नवनिर्मित उपायों को धन्यवाद जो कुछ राज्यों में न्यायपालिका द्वारा किए गए थे, जिनमें लोक अदालतों द्वारा न्यायालय विवाद का समाधान 1970 और 80 के दौरान काफी लोकप्रिय हुआ । विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के आ जाने से लोक अदालतों और विधिक सहायता स्कीमों को कानूनी मान्यता प्राप्त हो गई और वे न्याय प्रदान करने वाली पद्धति का अभिन्न और महत्वपूर्ण भाग हो गई ।

2. धारा 89 और उसकी स्कीम का विश्लेषण

2.1 सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1999 के द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में धारा 89 को पुनःस्थापित किया गया था और वह 01-07-2002 से प्रभावी हुई । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 यथा निम्नलिखित है :

89. न्यायालय के बाहर विवादों का निपटारा -(1) जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान हैं, जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं वहां न्यायालय समझौते के निबंधन बनाएगा और उन्हें पक्षकारों को उनकी टीका-टिप्पणी के लिए देगा और पक्षकारों की टीका-टिप्पणी प्राप्त करने के पश्चात् न्यायालय संभव समझौते के निबंधन पुनः बना सकेगा और उन्हें :-

(क) माध्यस्थम्;

(ख) सुलह;

(ग) न्यायिक समझौते, जिसके अंतर्गत लोक अदालत के माध्यम से समझौता भी है; या

(घ) बीच बचाव के लिए निर्दिष्ट करेगा ।

(2) जहां कोई विवाद-

(क) माध्यस्थम् या सुलह के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो माध्यस्थम् या सुलह

के लिए कार्यवाहियां उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते के लिए निर्दिष्ट की गई थीं;

(ख) लोक अदालत को निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय उसे विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 20 की उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार लोक अदालत को निर्दिष्ट करेगा और उस अधिनियम के सभी अन्य उपबंध लोक अदालत को इस प्रकार निर्दिष्ट किए गए विवाद के संबंध में लागू होंगे;

(ग) न्यायिक समझौते के लिए निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय उसे किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को निर्दिष्ट करेगा और ऐसी संस्था या व्यक्ति को लोक अदालत समझा जाएगा तथा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) के सभी उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो वह विवाद लोक अदालत को उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन निर्दिष्ट किया गया था;

(घ) बीच बचाव के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए।”

धारा 89 का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि न्यायालय विचारण प्रारंभ होने के पूर्व वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से किसी एक के माध्यम से न्यायालय के बाहर समझौतों को सुगम बनाने के लिए प्रयास करे।

2.2 संबंधित उपबंध, जो उसी संशोधन अधिनियम द्वारा निगमित किए गए थे, वे हैं जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10 के नियम 1क, 1ख और 1ग में अंतर्विष्ट हैं, जो नीचे उद्धृत किए जाते हैं :

1क. वैकल्पिक विवाद समाधान के किसी एक तरीके के लिए विकल्प देने के लिए न्यायालय का निदेश – स्वीकृतियों और प्रत्याख्यानों को अभिलिखित करने के पश्चात्, न्यायालय वाद के पक्षकारों को धारा 89 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय के

बाहर समझौते के किसी भी तरीके का विकल्प देने के लिए निदेश देगा। पक्षकारों के विकल्प पर न्यायालय ऐसे मंच या प्राधिकरण के समक्ष, जो पक्षकारों द्वारा विकल्प दिया जाए, उपसंजात होने की तारीख नियत करेगा।

1ख. सुलह मंच या प्राधिकरण के समक्ष उपसंजात होना — जहां कोई वाद नियम 1क के अधीन विनिर्दिष्ट किया जाता है वहां पक्षकार वाद के सुलह के लिए ऐसे मंच या प्राधिकरण के समक्ष उपसंजात होंगे।

1ग. सुलह के प्रयासों के असफल होने के परिणामस्वरूप न्यायालय के समक्ष उपसंजात होना — जहां कोई वाद नियम 1क के अधीन निर्दिष्ट किया जाता है और सुलह मंच या प्राधिकरण के पीठासीन अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि मामले में आगे कार्यवाही करना न्याय के हित में उचित नहीं होगा तो वह न्यायालय को पुनः मामला निर्दिष्ट करेगा और पक्षकारों को उसके द्वारा नियत तारीख को न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने के लिए निदेश देगा।

2.3 इन उपबंधों की पुरःस्थापना के साथ, सिविल न्यायालयों पर वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए पक्षकारों को सुपुर्द करके विवादों को निपटाने का प्रयास करने के लिए एक आज्ञापक कर्तव्य डाला गया है। पांच वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियां धारा 89 में निर्दिष्ट की गई हैं वे (क) माध्यस्थम्, (ख) सुलह, (ग) न्यायिक समझौता, (घ) लोक अदालत के माध्यम से समझौता और (ङ) बीच बचाव हैं।

2.4 माध्यस्थम् और साथ ही सुलह, माध्यमस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में "माध्यस्थम सुलह" अधिनियम) द्वारा शासित होते हैं, जिसने 1940 के पूर्व वाले माध्यस्थम् अधिनियम को अतिष्ठित किया था। मध्यस्थता एक न्याय निर्णायक प्रक्रिया है, जो सुलह के समान नहीं है। एक बार जब सिविल विवाद को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट कर दिया जाता है तो मामला उच्च न्यायालय के क्षेत्र से स्थायी रूप से बाहर चला जाता है और वह न्यायालय में वापस नहीं आता है। तथापि, इसके विरुद्ध सुलह के लिए, जो गैर-न्याय निर्णयन प्रक्रिया है, निर्दिष्ट किया गया विवाद

स्थायी रूप से न्यायिक प्रक्रिया के क्षेत्र के बाहर नहीं जाता है। यदि कोई सौहार्दपूर्ण समझौता नहीं होता है तो मामला न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है जिसे विवादकों की विरचना करने के पश्चात् विचारण के लिए अग्रसर होना होता है। माध्यस्थ या सुलह के लिए निर्देश केवल तभी संभव है जब पक्षकारों की सहमति हो। सहमति की अनुपस्थिति में न्यायालय स्वप्रेरणा से पक्षकारों को माध्यस्थ या सुलह के लिए निर्दिष्ट नहीं कर सकता है। इस न्यायिक स्थिति के बारे में हाल में उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकोंन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर बनाम चैरियन वार्क कंस्ट्रक्शन कंपनी (प्रा.) लिमिटेड¹ के मामले में दिए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय को दृष्टि में रखते हुए कोई संदेह नहीं रह गया है। माध्यस्थ के विषय में यह है कि यदि कोई पूर्व विद्यमान माध्यस्थ करार नहीं है तो वाद के पक्षकार संयुक्त ज्ञापन या आवेदन फाइल करके माध्यस्थ के लिए सहमत हो सकते हैं और न्यायालय तत्पश्चात् मामले को माध्यस्थ के लिए निर्दिष्ट कर सकता है और ऐसा माध्यस्थ, माध्यस्थ और सुलह अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा। मध्यस्थ का पंचाट, उसको ध्यान में रखते हुए जो माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 36 में कहा गया है, पक्षकारों पर आबद्धकर है और वह उसी प्रकार प्रवर्तनीय है मानो वह न्यायालय की डिक्री हो। यदि कोई समझौता माध्यस्थ प्रक्रियाओं के दौरान होता है तो मध्यस्थ द्वारा दिया गया पंचाट ऐसे तय पाये गए निबंधनों के आधार पर वही प्रास्थिति और प्रभाव रखेगा जैसे कोई अन्य माध्यस्थ पंचाट रखता है, देखिए माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 30।

2.5 जब मामले को सुलह के माध्यम से तय किया जाता है तो समझौता करार की वही प्रास्थिति होगी और वही प्रभाव होगा मानो वह माध्यस्थ पंचाट हो (देखिए माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 74) और इसलिए वह माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 36 के आधार पर न्यायालय की डिक्री के रूप में प्रवर्तनीय होगा। समान रूप से जब कोई समझौता लोक अदालत के समक्ष होता है, तो लोक अदालत का पंचाट विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षेप में वि. से. प्रा. अधिनियम) की धारा 21 के अधीन सिविल न्यायालय की डिक्री समझा जाएगा।

2.6 उच्चतम न्यायालय ने एफकोंन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर " (ऊपर) के मामले में कहा था " चूंकि

¹ (2010) 8 एस.सी. सी. 24.

न्यायालय उन मामलों के ऊपर, जिन्हें वह सुलह या लोक अदालतों के लिए निर्दिष्ट करता है, नियंत्रण और अधिकारिता बनाए रखता है, अतः सुलह में हुआ समझौता करार या लोक अदालत का पंचाट उसे अभिलिखित करने वाले न्यायालय के समक्ष रखा जाना होगा और उसके निबंधनों के अनुसार उसका निपटारा होगा।" कार्रवाई का ऐसा अनुक्रम वास्तव में आवश्यक है या नहीं इस बारे में हम कुछ बाद में चर्चा करेंगे।

2.7 बीच बचाव के संबंध में चर्चा करते हुए कहा जा सकता है कि व्यवहार्य रूप से सुलह और बीच बचाव में कोई अंतर नहीं है और बहुधा उनका अंतर्विनिमय शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है। बीच बचाव का उद्देश्य सुलह है और सुलह के अंतर्गत बीच बचाव का तत्व है। ब्रियन ए. गार्नर के मार्डन लीगल यूसेज संबंधी शब्दकोष में इसे इस प्रकार कथित किया गया है : "बीच बचाव और सुलह के बीच विभिन्नता के बारे में उन व्यक्तियों द्वारा, जो वैकल्पिक विवाद समाधान में रुचि रखते हैं, विस्तृत रूप से बहस की गई है कुछ व्यक्ति सुझाव देते हैं कि सुलह 'गैर आबद्धकर माध्यस्थम्' है, जबकि बीच बचाव मात्र 'सहायता प्राप्त बातचीत' है। दूसरे व्यक्ति इसे लगभग विपरीत रूप में रखते हैं। सुलह में तीसरा पक्षकार, जो विवाद करने वाले पक्षकारों को उनके मतभेदों का समाधान करने में उनकी सहायता करने के लिए उन्हें एक साथ लाने का प्रयास करता है, सम्मिलित है, जबकि बीच बचाव तीसरे पक्षकार को उन निबंधनों का, जिन पर विवाद को सुलझाया जा सकता है, सुझाव देने के लिए अनुज्ञा देकर आगे तक जाता है। फिर भी अन्य व्यक्ति इन प्रयासों को विभेद के आधार पर नामंजूर करते हैं और तर्क देते हैं कि इस बारे में कोई सहमति नहीं है कि दोनों शब्दों से क्या अभिप्रेत है - यह कि वे शब्द साधारणतया अंतर्विनिमय हैं। यद्यपि एक सुभिन्नता सुविधाजनक होगी, जो व्यक्ति यह तर्क देते हैं कि प्रथा मौटे तौर पर समानार्थता दर्शित करती है, अधिकतम सही हैं।

2.8 इस पर विचार किया जा सकता है कि माध्यस्थम् सुलह अधिनियम की धारा 73 समझौते के निबंधनों का सुझाव देने वाले सुलहकर्ता को ध्यान में रखती है। अतः उपर्युक्त पैरा में देखी गई विभिन्नता भारत के लिए ठीक नहीं है। श्री न्यायमूर्ति आर. वी. रविन्द्रन, पूर्ववर्ती न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय और एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में निर्णय के लेखक के अनुसार जहां

सुलहकर्ता बीच बचाव की कला में प्रशिक्षित वृत्तिक है (आम आदमी, मित्र, संबंधी शुभचिंतक या सुलहकर्ता के रूप में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता के विपरीत), वहां सुलह की प्रक्रिया को बीच बचाव के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। उन मामलों में, जहां वह तीसरा पक्षकार, जो समझौते पर पहुंचने के लिए पक्षकारों की सहायता करता है, प्रशिक्षित वृत्तिक बीच-बचाव करने वाला नहीं है, वहां प्रक्रिया को सुलह के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है²। तथापि यह बताना आवश्यक है कि बहुत से राज्यों में विधिक वृत्तियों सहित प्रशिक्षित बीच बचाव करने वाले हैं और कुछ राज्यों में न्यायपालिका द्वारा प्रबंधित बीच बचाव केंद्र हैं। बीच बचाव अब एक विज्ञान के रूप में प्रकट हुआ है।

एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में, उच्चतम न्यायालय ने 'आदर्श बीच बचाव नियम' में दी गई बीच बचाव की परिभाषा के प्रति निर्देश किया है, जिसके अनुसार "बीच बचाव" द्वारा समझौता से वह प्रक्रिया अभिप्रेत है जिसके द्वारा, यथास्थिति, पक्षकारों द्वारा या न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया कोई बीच-बचाव करने वाला वाद के पक्षकारों के बीच विवाद में, भाग 2 में दिए गए बीच-बचाव नियम, 2003 के उपबंधों को लागू करके और विशिष्टतया पक्षकारों के बीच सीधे विचार-विमर्श को सुगम बनाके या बीच बचाव करने वाले के माध्यम से एक दूसरे के साथ संपर्क करते हुए, विवादकों की पहचान करने में पक्षकारों की सहायता करके, भ्रांतियों को कम करके, पूर्विकताओं को स्पष्ट करके, समझौते के क्षेत्रों की खोज करके, विवाद का हल करने के प्रयास में विकल्पों को उत्पन्न करके और इस बात पर जोर देते हुए कि विनिश्चय करने का, जो उन पर प्रभाव डालेंगे, पक्षकारों का अपना दायित्व है, बीच बचाव करता है।" संक्षेप में बीच बचाव विवाद के हल की ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बीच बचाव करने वाला विवाद के पक्षकारों की किसी सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने के लिए सहायता करता है और उन्हें समझाता है।

2.9 न्यायिक समझौते से ऐसा समझौता अभिप्रेत है जो मामले का न्याय-निर्णयन करने वाले न्यायालय या किसी दूसरे न्यायाधीश की, जिसे न्यायालय ने विवाद को निर्दिष्ट किया था, सहायता से पक्षकारों द्वारा किया गया हो। ब्लेक की विधि शब्दावली में "न्यायिक समझौता" को "किसी ऐसे न्यायाधीश की सहायता से, जिसे विवाद का न्याय-निर्णयन करने के लिए समनुदेशित नहीं किया

² न्यायमूर्ति आर. वी. रविन्द्रन, 'सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 : नीड फार एन अर्जेन्ट रीलुक', (2007) 4 एस. सी. सी. जे. 123.

गया है, किए गए किसी सिविल मामले के समझौते" के रूप में परिभाषित किया गया है ।

2.10 धारा 89 और आदेश 10 के नियम 1क के बीच अंतर-संबंध के प्रति निर्देश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने बताया था कि उनमें कोई असंगति नहीं है । धारा 89 न्यायालय को किसी विवाद को वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट करने की अधिकारिता प्रदान करती है जबकि आदेश 10 के नियम 1क से 1ग तक वह रीति अधिकथित करते हैं, जिसमें न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग किया जाना है । यह स्कीम इस प्रकार है कि न्यायालय पक्षकारों को वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के संबंध में उपलब्ध विकल्पों को स्पष्ट करता है और सहमति द्वारा किसी प्रक्रिया का चयन करने के लिए उन्हें अनुज्ञा देता है और यदि कोई सहमति न हो तो प्रक्रिया का चयन करने के लिए अग्रसर होता है ।

3. धारा 89 की पृष्ठ भूमि

3.1 आगे बढ़ने से पूर्व हम सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, जो 1997 में पुरःस्थापित किया गया था, से संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन और खंडों पर टिप्पण के प्रति निर्देश कर सकते हैं :

उद्देश्यों और कारणों का कथन : “ 3.(घ) भारत के विधि आयोग की 129वीं रिपोर्ट को कार्यान्वित करने और सुलह स्कीम को प्रभावी बनाने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायालय के लिए, विवाद्यकों की विरचना करने के पश्चात्, माध्यस्थम्, सुलह, बीच-बचाव, न्यायिक समझौते के द्वारा या लोक अदालत के माध्यम से निपटारे के लिए विवाद को निर्दिष्ट करना, आबद्धकर बनाया जाए । यह केवल पक्षकारों के वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियों में से किसी एक के माध्यम से अपना विवाद निपटाने में असफल होने के पश्चात् है कि वह वाद् उस धारा के अंतर्गत, जिसमें उसे फाइल किया गया था, अग्रसर होगा ।”

खंडों पर टिप्पण : “खंड 7 न्यायालय के बाहर विवादों के निपटारे के लिए उपबंध करता है । खंड 7 के उपबंध भारत के विधि आयोग द्वारा और मालिमथ समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर आधारित है । भारत के विधि आयोग द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि न्यायालय वाद् या कार्यवाहियों के किसी पक्षकार से पक्षकारों के बीच विवाद के किसी सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने की दृष्टि से स्वयं उपसंजात होने की अपेक्षा कर सकेगा और पक्षकारों के बीच विवाद के सौहार्दपूर्ण निपटारे के लिए प्रयास कर सकेगा । मालिमथ समिति ने विवाद्यक विरचित कर दिए जाने के पश्चात् न्यायालय के लिए माध्यस्थम्, सुलह, बीच-बचाव, न्यायिक समझौते के द्वारा या लोक अदालत के माध्यम से विवाद को निर्दिष्ट करना आबद्धकर बनाने के लिए सिफारिश की थी । यह केवल पक्षकारों के वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियों में से किसी एक के माध्यम से अपना विवाद निपटाने में असफल होने के पश्चात् है कि उस वाद को अग्रसर किया जा सकता है । उपर्युक्त की दृष्टि से खंड 7 वैकल्पिक विवाद समाधान का उपबंध करने के लिए संहिता में नई धारा 89 अंतःस्थापित करने के लिए है ।

3.2.1 भारत के विधि आयोग की 129वीं रिपोर्ट (1988)

विधि आयोग ने सुलह न्यायालय पद्धति को प्रारंभ किए जाने की सिफारिश की थी जो हिमाचल प्रदेश में गृह किराया, कब्जा संबंधी विवादों और ऐसे अन्य विवादों जैसे विरासत/ उत्तराधिकार, विभाजन, पालन-पोषण और बिल के बारे में, जो साधारणतया निकट संबंधियों के बीच होते हैं, कार्यवाही करने के लिए प्रचलित रही थी। आयोग ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 के नियम 5ख के प्रति निर्देश किया था, जिसका शीर्षक "सरकार या लोक अधिकारी के विरुद्ध वादों में निपटारा कराने में सहायता करने के लिए न्यायालय का कर्तव्य" है और कहा था : "यद्यपि नियम 5ख अपने लागू होने में ऐसे वाद तक सीमित है जिसमें सरकार या अपनी पदीय हैसियत में कार्य करने वाला लोक अधिकारी पक्षकार है, किंतु अब समय आ गया है कि उसमें उपबंधित विवादों के समाधान की पद्धति की सीमा का सिविल न्यायालयों में सभी वादों तक, जिनके अंतर्गत मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष प्रतिकर के लिए दावा भी है, विस्तार किया जाए। नियम 5ख उपबंध करता है कि ऐसे वाद में जिसे वह लागू होता है, न्यायालय का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह, प्रथमतः, जहां ऐसा करना मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से सुसंगत हो, वाद की विषय-वस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने के लिए पक्षकारों की सहायता करने के लिए प्रत्येक प्रयास करे। जहां न्यायालय की यह राय है कि वाद के पक्षकारों के बीच समझौता होने की युक्तियुक्त संभावना है तो वहां कार्यवाहियां ऐसी अवधि के लिए, जो वह ठीक समझे, स्थगित की जा सकेंगी जिससे कि ऐसा समझौता कराने के लिए प्रयत्न किए जा सकें। नियम 5ख उस न्यायालय से, जिसके समक्ष वाद लंबित है, विवाद में सुलह कराने के लिए स्वयं प्रयास करने की आशा करता है।" इसके पश्चात् हिमाचल प्रदेश में स्थापित सुलह न्यायालयों की विशेष बातों को उस समय आयोग द्वारा विज्ञापित किया गया था। आयोग ने हिमाचल प्रदेश में सुलह न्यायालय द्वारा, उन मामलों में जहां पक्षकार न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होते हैं, अनुभव की गई कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से, यह आवश्यक समझा की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10 में निम्नलिखित आशय का एक उपबंध पुरःस्थापित किया जाए :

(i) निम्नलिखित को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10 के नियम 2 के खंड (i) के

उपखंड (ख) के तुरंत पश्चात् उपखंड (ग) के रूप में जोड़ा जा सकता है :

"पक्षकारों के बीच विवाद के किसी सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने की दृष्टि से, वाद या कार्यवाही में किसी पक्षकार की उपस्थिति की, स्वयं उपसंजात होने की, अपेक्षा कर सकेगा और पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण रूप से विवाद का समझौता कराने के लिए प्रयास कर सकेगा ।"

(ii) निम्नलिखित को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10 के नियम 4 के खंड (2) के ठीक नीचे खंड (3) के रूप में जोड़ा जा सकता है :

"जहां कोई पक्षकार, जिसे पक्षकारों के बीच विवाद के किसी सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचने की दृष्टि से स्वयं न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने का आदेश दिया जाता है, न्यायालय के समक्ष इस प्रकार नियत तारीख को विधिपूर्ण प्रतिहेतु के बिना उपस्थित होने में असफल रहता है, वहां न्यायालय उसके विरुद्ध निर्णय सुना सकेगा या वाद के संबंध में ऐसा आदेश कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।"

3.2.2. इन परिवर्द्धनों के साथ विधि आयोग की यह राय थी कि यह स्कीम बहुत प्रभावी होगी और उसे सभी न्यायालयों में आबद्धकर बनाया जाना चाहिए और उन परिसीमाओं को हटा दिया जाना चाहिए जो उन वादों के लिए, जो उनसे भिन्न हैं जो वहां उपवर्णित हैं, प्रक्रिया के लागू करने के विषय में आदेश 27 के नियम 5ख में सन्निहित हैं । वास्तव में यह स्कीम सिविल न्यायालयों के समक्ष आने वाले सिविल प्रकृति के सभी वादों को लागू होनी चाहिए, यह कहा गया था ।

4. धारा 89 में प्रारूपण संबंधी त्रुटियां - एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामला

4.1 महान उद्देश्य के साथ अधिनियमित की गई धारा 89 में ऐसी प्रारूपण संबंधी त्रुटियां प्रकट हुई हैं जिन्होंने उसकी सही परिधि और उसके प्रयोजन को समझने में जटिलताएं उत्पन्न की हैं। उच्चतम न्यायालय ने एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में उचित रूप से कहा है कि उस उपबंध का सही निर्वचन और उसको समझना “विचारण करने वाले न्यायाधीश के लिए दुःस्वप्न” हो गया है।

4.2 ‘प्रथम और प्रमुख असंगति’ (जो एफकॉन्स मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा इंगित की गई है) धारा 89 की उपधारा (1) से विशेष रूप से “समझौते के निबंधन पुनः बना सकेगा” शब्दों से संबंधित है। उपधारा न्यायालय से अपेक्षा करती है कि वह समझौते के निबंधन बनाए और उन्हें पक्षकारों के समक्ष “उनकी टीका-टिप्पणी के लिए” रखे और तत्पश्चात् उनकी टीका-टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए संभव समझौते के निबंधन पुनः बनाए। इसको शाब्दिक रूप से पढ़ना आगे दर्शित करता है कि ऐसे पुनः बनाने पर, न्यायालय को विवाद को वैकल्पिक विवाद समाधान संबंधी पांच पद्धतियों में से किसी एक के लिए निर्दिष्ट करना होगा, जो वास्तव में अर्थहीन है। माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 73 (1) की भाषा उधार ली गई है और व्यवहार्य रूप से धारा 89 की आशयित परिधि और प्रयोजन को ठीक से समझे बिना धारा 89 में प्रतिरोपित कर दी गई है। जैसाकि उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकॉन्स मामले में बताया गया है कि वैकल्पिक विवाद समाधान - पूर्व निर्देश के प्रक्रम पर न्यायालय द्वारा समझौते के निबंधनों का बनाया जाना और पुनः बनाया जाना पूर्णतया अनुपयुक्त है। पैरा 16 में, उच्चतम न्यायालय ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 73 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 (उपाबंध-1) को, बेतुकेपन को दर्शित करने के लिए, उद्धृत किया है और टिप्पणी की है : “न्यायालयों के लिए प्रारंभिक सुनवाई पर ऐसे कार्यों को करना यह सुनिश्चित करने के लिए संभव नहीं है कि कोई मामला वैकल्पिक विवाद समाधान के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और यदि ऐसा है तो किस वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने आगे टिप्पणी की है “किसी सुलहकर्ता द्वारा सुलह के अंतिम प्रक्रम पर क्या किया जाना अपेक्षित है वह धारा 89 में पूर्णरूप से उधार लिया गया अवरोध है और न्यायालयों से गलत रूप से यह अपेक्षा की गई है कि वे समझौते के निबंधनों को

बनाए और उन्हें पुनः वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश करने के पूर्व प्रक्रम पर बनाए।”
पारिणामिक स्थिति को विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा निम्नलिखित शब्दों में चित्रित किया गया है :-

“यदि निर्देश माध्यम के लिए किया जाना है तो न्यायालय द्वारा बनाए गए समझौते के निबंधनों का कोई उपयोग नहीं होगा, क्योंकि जो माध्यम के लिए निर्दिष्ट किया जाता है वह विवाद है न कि समझौते के निबंधन ; और मध्यस्थ विवाद के ऊपर न्याय-निर्णय करेगा तथा पंचाट के रूप में अपना विनिश्चय देगा । यदि निर्देश सुलह/बीच-बचाव/लोक अदालत के लिए है तो समझौते के निबंधनों को बनाने या पुनः बनाने का कार्य सुलहकर्ता या बीच-बचाव करने वाले का या लोक अदालत का, सुलह/बीच-बचाव की संपूर्ण क्रिया करने के पश्चात्, है । इस प्रकार न्यायालय द्वारा बनाए गए समझौते के निबंधन किसी पश्चात्वर्ती वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया में पूर्णरूप से अर्थहीन होंगे । अतः न्यायालयों को निर्देश पूर्व प्रक्रम पर समझौते के निबंधन बनाने के दूसरे और वास्तव में असंभव किंतु बेकार कार्य के भार से क्यों बोझिल बनाया जाना चाहिए ।”

इस संदर्भ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय ने **सालेम एडवोकेट्स बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ³** में इस विसंगति को दूर करने का स्पष्ट प्रयास करने में “विवादों का संक्षेप” शब्दों के लिए “समझौते के निबंधन” शब्दों को समान स्थान दिया था ।

4.3 “कैसे धारा 89 का निर्वचन किया जाना चाहिए” यह अगला प्रश्न था जो उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकोन्स मामले में संबोधित किया गया था । विद्वान् न्यायाधीश ने इस प्रतिपादना के समर्थन में कि किसी कानून की भाषा को कोई विसंगति दूर करने के लिए अपवादात्मक मामले में उपांतरित किया जा सकता है, निर्वचन के सिद्धांतों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् विधिक स्थिति को इस प्रकार अधिकथित किया था :-

“धारा 89 को आदेश 10 के नियम 1-क के साथ पढ़ा जाना होगा, जो न्यायालय से अपेक्षा करता है कि वह पक्षकारों को वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं की पांच पद्धतियों में

³ (2006) 6 एस. सी. सी. 344.

किसी एक का चयन करने के लिए निदेश दे और उनके विकल्प पर मामले को निर्दिष्ट करे । उक्त नियम न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह या तो समझौते के निबंधन बनाए या पक्षकारों को ऐसे निबंधन उपलब्ध कराए, जिन पर उनकी टीका-टिप्पणी प्राप्त करने के पश्चात् संभव समझौते के निबंधन पुनः बनाए जा सकें । अतः धारा 89 और आदेश 10 के नियम 1-क को पढ़ने का व्यावहारिक तरीका केवल यह है कि अभिवचन पूरे हो जाने के पश्चात् और जहां कहीं अपेक्षित हो वहां स्वीकृति/प्रत्याख्यान को अभिलिखित करने के पश्चात् और विवादकों की विरचना करने के पूर्व, न्यायालय संहिता की धारा 89 का आश्रय लेगा । ऐसा आश्रय न्यायालय से अपेक्षा करता है कि वह विवाद की प्रकृति पर विचार करे और उसे अभिलिखित करे, पक्षकारों को उपलब्ध पांच विकल्पों के बारे में सूचित करे और उनके अधिमानों का ध्यान रखे और तत्पश्चात् उन्हें वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से एक के लिए निर्दिष्ट करे ।"

4.4 द्वितीयतः उच्चतम न्यायालय ने "न्यायिक समझौते" और "बीच-बचाव" शब्दों का मिश्रण करने में अन्य प्रकट प्रारूपण संबंधी गलतियों को ठीक से अनावृत्त किया । उच्चतम न्यायालय ने इंगित किया कि धारा 89 को उचित अर्थ देने के लिए, उक्त दो शब्दों को अंतर्विनिमयित किया जाना चाहिए । "बीच-बचाव" को धारा 89(2) के खंड (ग) में स्थान मिलना चाहिए और "न्यायिक समझौते" को "बीच-बचाव" के स्थान पर खंड (घ) में अंतरित किया जाना चाहिए । अन्यथा जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से बताया गया है, विसंगति बनी रहेगी । यह विसंगति निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट की गई है :

"प्रथम विसंगति संहिता की धारा 89 की उपधारा (2) के खंड (ग) और खंड (घ) के अंतर्गत "बीच-बचाव" और "न्यायिक समझौता" की परिभाषाओं का मिश्रण करना है । खंड (ग) कहता है कि "न्यायिक समझौते" के लिए, न्यायालय उसे ऐसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को निर्दिष्ट करेगा, जिसे लोक अदालत समझा जाएगा । खंड (घ) उपबंध करता है कि जहां निर्देश "बीच-बचाव" के लिए है, वहां न्यायालय ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए, जो विहित की जाए, पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा । इसका कोई अर्थ नहीं होता कि न्यायालय द्वारा कराए गए समझौते को, "बीच-बचाव" कहा जाए, जैसा खंड (घ) में किया गया है । इसका भी कोई अर्थ नहीं होता कि किसी न्यायालय द्वारा किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को किसी

समझौते पर पहुंचने के लिए किए गए किसी निर्देश को “न्यायिक समझौता” कहा जाए, जैसा खंड (ग) में किया गया है।”

4.5 उपर्युक्त विचार-विमर्श के अनुरूप, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में संशोधनों की प्रतिपादना की ;

“पूर्वोक्त को दृष्टि में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकालना होगा कि संहिता की धारा 89 का उचित निर्वचन न्यायालय के सादा और शाब्दिक वाचन से दो परिवर्तनों की अपेक्षा करता है। प्रथम न्यायालय के लिए, वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए पक्षकारों को निर्देशित किए जाने के पूर्व, किसी संभव समझौते के निबंधनों को बनाना या पुनः बनाना आवश्यक नहीं है। यह पर्याप्त है यदि न्यायालय (एक दो वाक्यों में) विवाद की प्रकृति का केवल वर्णन कर देता है और निर्देश कर देता है। दूसरे धारा 89(2) के खंड (ग) और खंड (घ) में “न्यायिक समझौता” और “बीच-बचाव” की परिभाषाओं को प्रारूपकार की गलती को ठीक करने के लिए अंतर्विनिमित्त करना होगा। संहिता की धारा 89(2) के खंड (ग) और खंड (घ) को निम्नलिखित रूप में, जब दोनों शब्दों को अंतर्विनिमित्त किया जाता है, पढ़ना होगा :

(ग) “बीच-बचाव” के लिए, न्यायालय उसे किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को निर्दिष्ट करेगा और ऐसी संस्था या व्यक्ति को लोक अदालत समझा जाएगा तथा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) के सभी उपबंध ऐसे लागू होंगे, मानो विवाद को किसी लोक अदालत को उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन निर्दिष्ट किया गया है।

(घ) “न्यायिक समझौता” के लिए न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो विहित की जाए।”

4.6 तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया ;

निर्वचनात्मक प्रक्रिया द्वारा किए गए “उपर्युक्त परिवर्तन तब तक प्रवृत्त रहेंगे जब तक कि विधानमंडल गलतियों को सही करता है, जिससे कि धारा 89 अर्थहीन और निष्फल न हो जाए।” (इस पर जोर दिया गया)

5. परिवर्तन जिन पर मोटे रूप से विचार किया गया

5.1 उपर्युक्त टिप्पणियों के संदर्भ में, हम धारा 89 में और साथ ही संबंधित उपबंधों में संशोधनों का प्रस्ताव कर रहे हैं, जो सारभूत रूप से उनके समान है, जिनका उच्चतम न्यायालय ने सुझाव दिया है।

5.2 अध्यक्ष ने, अन्य विद्वान् सदस्यों के सहयोग से विशाखापटनम् और दिल्ली में न्यायिक अधिकारियों से इस बारे में उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया कि क्या उन्होंने एफकोंस इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को प्रभावी बनाने में किसी व्यावहारिक कठिनाई का अनुभव किया है या उसकी परिकल्पना की है। अधिकांश न्यायिक अधिकारियों ने और अधिवक्ताओं तक ने किसी विशिष्ट कठिनाई को प्रकट नहीं किया। तथापि, कुछ ने सावधानीपूर्वक कहा कि यह केवल समय के अनुक्रम में होगा, तभी यह मालूम होगा कि क्या कोई समस्या इस धारा को, उसके परिवर्तित रूप में, कार्यान्वित करने में उत्पन्न होती है। यह गुणात्मक कथन उस प्रवर्ग के मामलों के प्रति निर्देश से अधिक था, जो वैकल्पिक पद्धतियों द्वारा न्याय निर्णयन के लिए उचित या अनुचित रूप में वर्णित किए गए हैं। आयोग का यह विचार है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा धारा का, उसके प्रयोजन और आशय को दृष्टि में रखते हुए, सावधानीपूर्वक विश्लेषण करके अपनाया गया दृष्टिकोण सामान्य है और धारा 89 में संदिग्धता को दूर करने के लिए अभिप्रेत है। यह उचित समय है कि इस धारा का, उच्चतम न्यायालय द्वारा सुझाए गए आधारों पर, पुनः प्रारूपण किया जाए। दूसरे शब्दों में न्यायाधीश द्वारा बनाई गई विधि का विधायी कार्रवाई द्वारा उन्हीं आधारों पर अनुसरण किया जाना होता है। तथापि धारा 89 का पुनः प्रारूपण करते समय आयोग ने, स्पष्टतः और उचितता की दृष्टि से, उससे थोड़ा विचलन किया है, जिसका उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकोंस इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में सुझाव दिया गया है।

5.3 हम संक्षेप में ऊपर वर्णित मामले में उच्चतम न्यायालय के संप्रेक्षणों से विचलन के क्षेत्रों को निर्देशित करेंगे। अंतर्विनिमय करने वाले खंड (ग) और खंड (घ), जैसा विद्वान् न्यायाधीश द्वारा एफकोंस मामले में दर्शित किया गया है, निःसंदेह उन उपबंधों को, जैसे वे इस समय हैं, कुछ अर्थ देंगे। तथापि बीच-बचाव से संबंधित खंड (ग) फिर भी समुचित नहीं होगा। बीच-बचाव करने

वाले को लोक अदालत के रूप में मानना और बीच-बचाव के अनुक्रम में किए गए करार को लोक अदालत के पंचाट की प्रास्थिति से विनिहित करने का न तो कोई विशेष कारण है और न कोई औचित्य है। बीच-बचाव करने वाला पक्षकारों के बीच विवाद समाधान को केवल सुगम बना सकता है और किए गए समझौते के निबंधनों को तैयार कर सकता है। यह अनुचित होगा कि इसे अभिगृहीत कल्पना के माध्यम से लोक अदालत द्वारा पारित किसी पंचाट के रूप में माना जाए और ऐसा करने में कोई विशेष लाभ नहीं है। वास्तव में समुचित क्रम विद्वान् न्यायाधीश द्वारा निर्णय के पैरा 39 में निम्नलिखित शब्दों में दर्शित किया गया है : "जहां कोई निर्देश न्यायालय द्वारा किए गए किसी निर्देश के आधार पर किसी निष्पक्ष तीसरे पक्षकार ("बीच-बचाव", जैसा ऊपर परिभाषित किया गया है) के लिए है, यद्यपि उसे लोक अदालत के प्रति निर्देश समझा जाएगा, क्योंकि न्यायालय मामले के ऊपर अपना नियंत्रण और अधिकारिता बनाए रखता है, तो बीच-बचाव समझौते को न्यायालय के समक्ष उसे अभिलिखित करने और निपटाए जाने के लिए रखा जाना होगा।" अतः अधिक उचित क्रम यह होगा कि बीच-बचाव करने वाले से यह अपेक्षा की जाए कि वह बीच-बचाव के परिणामस्वरूप किए गए समझौते के निबंधनों को न्यायालय को प्रस्तुत करे जिससे कि न्यायालय, सम्यक् संवीक्षा के पश्चात्, पक्षकारों के बीच किए गए समझौते के अनुसार डिक्री पारित कर सके। तदनुसार हम प्रस्ताव करते हैं कि बीच-बचाव संबंधी उपबंध का पुनः प्रारूपण किया जाए। दूसरे यह उपबंध करना आवश्यक नहीं है कि लोक अदालत के पंचाट या सुलह के माध्यम से किए गए समझौते को निर्देश करने वाले न्यायालय को उन्हीं आधारों पर डिक्री पारित करने के लिए भेजा जाना चाहिए इस बात के होते हुए भी कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने एफकोन्स मामले के पैरा 38 में निम्नलिखित आशय के कतिपय संप्रेक्षण किए हैं : "यद्यपि किसी सुलह में किए गए समझौता करार या किसी लोक अदालत के समझौता पंचाट में उसके प्रवर्तन के लिए न्यायालय के अनुमोदन की सील की अपेक्षा तब नहीं की जा सकती, जब वे पक्षकारों द्वारा सीधे निर्देश पर न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना किए गए हों, किंतु यह स्थिति उस समय भिन्न होगी जब वे किसी लंबित वाद/कार्यवाही में किसी न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश पर किए गए हों। चूंकि न्यायालय उन मामलों पर, जिन्हें वह सुलह के लिए या लोक अदालत को निर्देशित करता है, नियंत्रण और अधिकारिता बनाए रखता है, अतः वहां सुलह में किए गए समझौता करार या लोक अदालत पंचाट को न्यायालय के समक्ष, उसे अभिलिखित करने और उसके निबंधनों के अनुसार उसका निपटारा

करने के लिए, रखा जाना होगा ।” जैसेकि तय पाए गए समझौते के आधार पर पारित किए गए लोक अदालत के पंचाट के मामले में उस पंचाट को विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 21 के आधार पर सिविल न्यायालय की डिक्री समझा जाता है । लोक अदालत की अध्यक्षता सेवानिवृत्त या आसीन न्यायिक अधिकारी करता है और निर्देश करने वाले न्यायालय द्वारा उसकी आगे संवीक्षा करना वास्तव में अनावश्यक होगा । इसके अतिरिक्त यदि कोई उपबंध 89 में किया जाता है, कि लोक अदालत का पंचाट संबंधित न्यायालय की डिक्री बनाया जाना चाहिए, तो इससे धारा 21 के साथ विरोध उत्पन्न होगा । इसी प्रकार यह भी कि यदि सुलहकर्ता द्वारा अधिप्रमाणित समझौता करार को न्यायालय की डिक्री के रूप में परिवर्तित किया जाता है तो इसका माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 74 के साथ विरोध होगा । धारा 74 इस बात पर जोर देती है कि समझौता करार वही प्रास्थिति और प्रभाव रखता है जो करार पाए गए निबंधनों पर माध्यस्थ पंचाट का होता है, मानो उसे माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 30 के अधीन किसी माध्यस्थ अधिकरण द्वारा दिया गया हो । यह कहना कि वह सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में प्रभाव रखेगा, माध्यस्थ सुलह अधिनियम में विद्यमान उपबंधों के साथ संगत नहीं होगा । इन उलझनों को दूर करने के लिए आवश्यक नहीं है कि विधान मंडल उच्चतम न्यायालय द्वारा दर्शित कार्यवाही ही करे । धारा 89 का उद्देश्य पूरा हो जाएगा चाहे लोक अदालत के पंचाट या सुलह करार के निबंधनों के अनुसार डिक्री पारित करने का आगे कदम नहीं भी उठाया जाए । कुछ जिला न्यायाधीशों/सचिवों, विधिक सेवा प्राधिकारियों से पूछताछ करने पर आयोग के अध्यक्ष को मालूम हुआ है कि विद्यमान पद्धति के अनुसार, निर्देश करने वाला न्यायालय, लोक अदालत से सूचना की प्राप्ति पर, लोक अदालत के पंचाट का मार्ग दर्शित करने वाले समझौते के तथ्य अभिलिखित करता है और पक्षकारों या उनके परामर्शियों की उपस्थिति में मामले को बंद कर देता है । कोई औपचारिक आदेश या डिक्री पारित नहीं की जाती है । ऐसी प्रक्रिया को विधिक रूप देने में संभवतः कोई आपत्ति नहीं हो सकती है । हम स्पष्ट कर सकते हैं कि “बीच-बचाव”, अकानूनी होते हुए भिन्न स्तर पर है । न्यायालय की अनुमति इसे प्रभावी बनाने के लिए अपेक्षित है ।

धारा 89 और आदेश 10, नियम 1क -निर्देश प्रक्रिया

5.4 एक महत्वपूर्ण प्रश्न, जिस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार-विमर्श किया गया, यह है कि

क्या वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश आज्ञापक है। इस संबंध में हम एफकोन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रकट किए गए विचारों को बताने के पूर्व उसके प्रति निर्देश कर सकते हैं, जो सालेम बार एसोसिएशन वाले मामले में कहा गया था, जिसमें धारा 89 और आदेश 10 के नियम - 1क के बीच प्रत्यक्ष विरोध के पहलू पर विचार किया गया था। वह निम्नलिखित है जिसे विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा था :

“धारा 89 को अधिनियमित करने के पीछे विधानमंडल का आशय यह है कि जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान है जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं वहां पक्षकारों को, न्यायालय के अनुरोध पर, सोच-विचार करने के लिए कहा जाएगा, जिससे कि वे उस धारा में वर्णित चार वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियों में से किसी एक का या दूसरे का चयन कर लें और यदि पक्षकार सहमत नहीं होते हैं तो न्यायालय उनको उक्त तरीकों में से किसी एक या दूसरे के लिए निर्दिष्ट करेगा। धारा 89 ‘देगा’ और ‘बना सकेगा’ दोनों शब्दों का प्रयोग करती है, जबकि आदेश 10 का नियम 1-क ‘देगा’ शब्द का प्रयोग करता है किंतु इन उपबंधों के तालमेलपूर्वक वाचन पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 89 में ‘बना सकेगा’ शब्दों का उपयोग केवल किसी संभव समझौते के निबंधनों को पुनः बनाने के पहलू को और वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियों में से किसी एक के लिए निर्देश को शासित करता है। इनमें कोई विरोध नहीं है। यह स्पष्ट है कि जो वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धतियों में से किसी एक के लिए निर्दिष्ट किया गया है वह विवाद है, जिसे धारा 89 के निबंधनों के अनुसार बनाए गए या पुनः बनाए गए समझौते के निबंधनों में संक्षेपित किया गया हैं। (जोर देने के लिए रेखांकित किया गया है)

5.5 इस प्रकार इन दोनों उपबंधों का मेल-मिलाप कराया गया है। अधोरेखांकित शब्द उक्त संप्रेक्षणों को समझने में संदिग्धता के तत्व को उत्पन्न करते हैं तथापि एफकोन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में उच्चतम न्यायालय ने विधिक स्थिति को अधिक उचित रूप से निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया है :

‘धारा 89 “जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान है” शब्दों के साथ प्रारंभ होती है। यह स्पष्ट रूप से दर्शित करता है कि ऐसे मामले, जो वैकल्पिक

विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए उपयुक्त नहीं है, संहिता की धारा 89 के अधीन निर्दिष्ट नहीं किए जाने चाहिए। न्यायालय को यह राय बनानी है कि कोई मामला ऐसा एक मामला है जो वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट किए जाने और तय किए जाने के योग्य है। संहिता के आदेश 10 के नियम 1-क के उपबंधों के तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए सिविल न्यायालय अधिकांशतः मामलों को वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट करता है। केवल कतिपय मान्यता प्राप्त अपवर्जित प्रवर्गों के मामलों में वह चयन कर सकता है कि उसे वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देशित न किया जाए। जहां कोई मामला किसी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से किसी एक के लिए भी निर्देश के लिए अनुपयुक्त है, वहां न्यायालय संहिता की धारा 89 के अधीन विहित समझौता प्रक्रियाओं में से किसी एक का भी आश्रय न लेने के लिए कारणों को संक्षेप में अभिलिखित करेगा। अतः अभिवचनों के पूरा हो जाने के पश्चात् सुनवाई करना संहिता की धारा 89 के अधीन वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं का आश्रय लेने का विचार करने के लिए आज्ञापक है। किंतु सभी मामलों में वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं के लिए वास्तव में निर्देश करना आज्ञापक नहीं है। जहां कोई मामला अपवर्जित प्रवर्ग के अधीन आता है, वहां वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश करना आवश्यक नहीं है। सभी अन्य मामलों में वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश आवश्यक है।”

5.6 तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने उन मामलों को प्रवर्गित किया जो वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए उपयुक्त हैं या उपयुक्त नहीं हैं। यह कहा गया कि निम्नलिखित प्रवर्ग के मामले साधारणतया उनकी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए उपयुक्त नहीं समझे गए हैं :

“(i) सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 के नियम 8 के अधीन प्रतिनिधि वाद, जिनमें लोक हित या बहुत से व्यक्तियों का हित, जो न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं है, अंतर्वलित होता है। (वास्तव में) ऐसे किसी मामले में समझौता भी कठिन प्रक्रिया है, जो वाद में, उसको स्वीकार किए जाने के पूर्व, हितबद्ध व्यक्तियों को सूचना दिए जाने की अपेक्षा करती है।

(ii) लोक पद के लिए निर्वाचन संबंधी विवाद (जो सोसाइटियों, क्लबों, संगम

आदि के प्रबंध पर नियंत्रण पाने का प्रयास करने वाले दो समूहों के बीच विवादों से भिन्न रूप में होते हैं) ।

(iii) ऐसे मामले जिनमें जांच के पश्चात्, धारा द्वारा प्राधिकारी की मंजूरी अंतर्वलित होती है, जैसे उदाहरण के लिए वाद या प्रोवेट का अनुदान या प्रशासन-पत्र ।

(iv) ऐसे मामले, जिनमें कपट, दस्तावेजों के बनाने, कूटरचना, प्रतिरूपण, प्रपीड़न आदि के गंभीर और विनिर्दिष्ट अभिकथन अंतर्वलित होते हैं ।

(v) ऐसे मामले जो धाराओं के संरक्षण की अपेक्षा करते हैं, उदाहरण के लिए, अल्पवयस्कों, देवताओं और मानसिक रूप से विक्षिप्त के विरुद्ध दावे और सरकार के विरुद्ध हक की घोषणा के लिए वाद ।

(vi) ऐसे मामले, जिनमें दांडिक अपराधों के लिए अभियोजन अंतर्वलित होता है ।

5.7 उच्चतम न्यायालय उन मामलों की (चाहे वे सिविल न्यायालयों या विशेष अधिकरणों में लंबित थे) जो वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं के लिए उपयुक्त थे, गिनती करने के लिए भी अग्रसर हुआ । ऐसे मामले मोटे तौर से निम्नलिखित पांच शीर्षकों के अधीन वर्गीकृत किए गए हैं :-

(i) सभी मामले, जो व्यवसाय, वाणिज्य और संविदाओं से संबंधित हैं ;

(ii) सभी मामले, जो कृत्रिम जैसे संबंध से उत्पन्न होते हैं, जैसे विवाह विषयक मामले ;

(iii) सभी मामले, जहां पूर्व विद्यमान संबंध को बनाए रखने की आवश्यकता है, जैसे पड़ोसी और समाज के सदस्यों के बीच विवाद ;

(iv) सभी मामले, जिनके अंतर्गत मोटर दुर्घटना दावे हैं, जो अपकृत्य संबंधी दायित्व से संबंधित हैं ; और

(v) सभी उपभोक्ता विवाद ।

5.8 इस प्रकार वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए साधारणतया 'उपयुक्त' और 'अनुपयुक्त' के रूप में मामलों को प्रवर्गीकृत करके उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया : "ये उदाहरणात्मक हैं, जिन्हें न्यायालय/अधिकरण, किसी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए

विवाद/मामले को निर्दिष्ट करने में अपनी अधिकारिता/अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय उचित अपवादों या परिवर्धनों के अधीन कर सकता है।”

5.9 उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि :

“न तो संहिता की धारा 89 और न आदेश 10 का नियम 1-क माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 या विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के उपबंधों को अतिष्ठित करने या उपांतरित करने के लिए आशयित है। दूसरी तरफ संहिता की धारा 89 यह स्पष्ट करती है कि वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से दो प्रक्रियाएं - माध्यस्थम् और सुलह, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होंगी और दो अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाएं - लोक अदालत समझौता और बीच-बचाव - विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम द्वारा शासित होंगी। जहां तक अंतिम वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया - न्यायिक समझौता - का संबंध है, धारा 89 यह स्पष्ट करती है कि वह किसी अधिनियमिति द्वारा शासित नहीं होती है और वह धारा ऐसी प्रक्रिया अपनाएगी जो (समुचित नियमों द्वारा) विहित की जाए।”

5.10 इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में निर्णय के पैरा 43 और पैरा 44 में दिया गया ‘सार संक्षेप’ उपाबंध-2 के रूप में इस रिपोर्ट से संलग्न है।

5.11 इसी समय, सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण सावधानी बरतने के लिए यह कहा कि पैरा 43 और पैरा 44 में निर्दिष्ट प्रक्रिया और पारिणामिक पहलू साधारण मार्ग-दर्शक सिद्धांत होने के लिए आशयित हैं, जिनमें ऐसे परिवर्तन किए जा सकते हैं, जिन्हें संबंधित न्यायालय किसी मामले की विशेष परिस्थितियों के प्रति निर्देश से ठीक समझे। उसका सार और संक्षेप जिसकी न्यायालय ने विस्तृत रूप से चर्चा की, पैरा 49 में इस प्रकार कथित है ;

“..... विवाद को जाने ; अनुचित मामलों को पृथक करें ; माध्यस्थम् या सुलह के लिए सहमति अभिनिश्चित करें ; यदि कोई सहमति न हो तो सादा मामलों के लिए लोक अदालत का और सभी अन्य मामलों के लिए बीच-बचाव का चयन करें, न्यायाधीश सहायता प्राप्त समझौते के लिए निर्देश को केवल अपवादात्मक या विशेष मामलों के लिए आरक्षित रखे।”

6. प्रस्तावित संशोधन

6.1 पूर्वगामी विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए, आयोग वैकल्पिक विवाद समाधान से संबंधित सिविल प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों में और न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की धारा 16 में निम्नलिखित संशोधनों की सिफारिश करता है :-

6.2 निम्नलिखित को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की विद्यमान धारा 89 के स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाएगा :

“89 : न्यायालय से बाहर विवादों का समझौता -

(1) जहां न्यायालय को वाद या अन्य कार्यवाही में अंतर्वलित विवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वह प्रतीत होता है कि विवाद गैर न्याय-निर्णयन संबंधी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं अर्थात् सुलह, न्यायिक समझौता, लोक अदालत द्वारा समझौता या बीच-बचाव, में से एक के द्वारा तय किए जाने के योग्य है तो न्यायालय, अधिमानतः विवादकों की विरचना करने के पूर्व, अपनी राय अभिलिखित करेगा और पक्षकारों को उक्त प्रक्रियाओं में से एक के माध्यम से, जिसको पक्षकार अधिमान दें या न्यायालय अवधारित करे, विवाद का समाधान करने का प्रयास करने के लिए निदेशित करेगा ।

(2) जहां पक्षकार सुलह को अधिमान देते हैं, वहां वे न्यायालय को सुलहकर्ता का/के नाम देंगे और उसकी या उनकी सहमति प्राप्त करने पर, न्यायालय सुलह प्रक्रिया पूरी करने के लिए एक समय-सीमा भी निर्दिष्ट कर सकेगा । तदुपरि, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 65 से धारा 81 तक के उपबंध, जहां तक हो सके, लागू होंगे और इस आशय के बारे में, न्यायालय पक्षकारों को सूचित करेगा । पक्षकारों के बीच हुए समझौता करार की प्रति संबंधित न्यायालय को भेजी जाएगी । किसी समझौते के न होने पर, सुलहकर्ता सुलह की प्रक्रिया और उसके परिणाम पर एक संक्षिप्त रिपोर्ट भेजेगा ।

(3) जहां विवाद को निम्नलिखित के लिए निर्दिष्ट किया गया है :

(क) न्यायिक समझौते के लिए, वहां न्यायिक अधिकारी पक्षकारों के बीच समझौता कराने का प्रयास करेगा और ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो विहित की जाए ;

(ख) लोक अदालत के लिए, वहां विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 20 की उपधारा 3 से उपधारा 7 तक के, धारा 21 और धारा 22 के उपबंध इस प्रकार निर्दिष्ट किए गए विवाद के संबंध में लागू होंगे और लोक अदालत पंचाट की एक प्रति संबंधित न्यायालय को भेजेगी और यदि कोई पंचाट पारित नहीं किया जाता है तो की गई कार्यवाहियों और उनके परिणाम पर एक संक्षिप्त रिपोर्ट भेजेगी ;

(ग) बीच-बचाव के लिए, वहां न्यायालय उसे उपयुक्त संस्था या व्यक्ति या व्यक्तियों को बीच-बचाव पूरा करने और न्यायालय को रिपोर्ट करने के लिए समय-सीमा संबंधी समुचित निर्देशों के साथ निर्दिष्ट करेगा ;

(4) समझौता करार या लोक अदालत के पंचाट की प्रति की प्राप्ति पर न्यायालय, यदि कोई असावधानीपूर्वक की गई भूल या प्रकट गलती को पाता है, तो सुलहकर्ता या लोक अदालत का ध्यान उस ओर आकर्षित करेगा, जो पक्षकारों की सहमति से करार या पंचाट को यथोचित रूप से परिशुद्ध करने के लिए आवश्यक कदम उठाएगी ।

(5) माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 और अन्य संबंधित उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय भी पक्षकारों को, यदि दोनों पक्षकार कोई माध्यस्थम् करार करते हैं या किसी वाद या अन्य सिविल कार्यवाही के लंबित होने के दौरान माध्यस्थम् के लिए निर्देश चाहने वाला आवेदन फाइल करते हैं तो, माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट कर सकेंगे और ऐसी दशा में माध्यस्थम्, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंधों द्वारा शासित होगा और वाद या अन्य कार्यवाही को तदनुसार निपटाया गया समझा जाएगा ।

6.3 सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10 के विद्यमान नियम 1-ख को हटाया जाना चाहिए ।
आदेश 10 के विद्यमान नियम 1-क और 1-ग के स्थान पर, निम्नलिखित नियमों को रखा जाएगा :

“1-क. वैकल्पिक विवाद समाधान के किसी भी एक तरीके के लिए विकल्प देने के लिए न्यायालय का निदेश -

विवादकों की विरचना करने या वाद की प्रथम सुनवाई करने के प्रक्रम पर, न्यायालय पक्षकारों को धारा 89 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय के बाहर समझौते के किसी भी तरीके का विकल्प देने के लिए निदेश देगा और इस प्रयोजन के लिए पक्षकारों से स्वयं उपसंजात होने की अपेक्षा कर सकेगा और किसी ठोस कारण के बिना उपसंजात न होने की दशा में साक्षी की उपसंजाति विवश करने के लिए प्रक्रिया अपनाएगा। न्यायालय ऐसे मंच या प्राधिकारी या व्यक्तियों के समक्ष, जिनके लिए पक्षकारों द्वारा विकल्प दिया जाए या जिनका न्यायालय द्वारा चयन किया जाए, उपसंजात होने की तारीख नियत करेगा।”

1-ख. सुलह के प्रयासों के असफल होने के परिणामस्वरूप न्यायालय के समक्ष उपसंजात होना -

जहां कोई वाद नियम 1-क के अधीन निर्दिष्ट किया गया है और सुलह मंच या प्राधिकरण के पीठासीन अधिकारी या उस व्यक्ति का, जिसको मामला निर्दिष्ट किया गया है, समाधान हो जाता है कि संबंधित पक्षकारों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मामले में आगे कार्यवाही करना न्याय के हित में उचित नहीं होगा तो वह न्यायालय को पुनः मामला निर्दिष्ट करेगा, जो पक्षकारों को नियत तारीख को अपने समक्ष उपसंजात होने के लिए निदेश देगा और वाद में आगे कार्यवाही करेगा।

6.4.1 धारा 16, न्यायालय फीस अधिनियम, 1870

एक और उपबंध है जिसके बारे में आयोग सरकार का ध्यान आकर्षित करना चाहेगा। वह न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की धारा 16 है, जिसे उसी सिविल प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम द्वारा अंतःस्थापित किया गया था, जिसके द्वारा धारा 89 को पुरःस्थापित किया गया था। धारा 16 जिसे इस प्रकार न्यायालय फीस अधिनियम में जोड़ा गया था, इस प्रकार है :

“16. फीस का प्रतिदाय

जहां न्यायालय वाद के पक्षकारों को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 में निर्दिष्ट विवाद के निपटारे के ढंगों में से कोई ढंग निर्देशित करता है, वहां वादी न्यायालय से ऐसा प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का हकदार होगा जिसमें उसे कलक्टर से, ऐसे वाद के संबंध में संदत्त फीस की पूरी रकम, वापस प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो।”

6.4.2 यहां पुनः स्पष्ट प्रारूपण संबंधी त्रुटि है, जो विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 21 के साथ विरोध उत्पन्न करती है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम उपबंध करता है कि लोक अदालत के समक्ष रखे गए किसी मामले में संदत्त न्यायालय फीस का, न्यायालय फीस अधिनियम 1870 के अधीन उपबंधित रीति से केवल तभी प्रतिदाय किया जाएगा जब कोई समझौता या निपटारा पक्षकारों के बीच हो जाता है। तथापि, न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 16, जैसी कि उसकी भाषा है, आगे जाती है और कहती है कि न्यायालय फीस न्यायालय द्वारा किसी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए किए गए किसी निर्देश मात्र पर प्रतिदेय है। इसका अभिप्राय यह होगा कि वास्तव में अधिकांश वादों में संदत्त की गई न्यायालय फीस का प्रतिदाय किया जाना होगा। उस मामले में क्या होगा जब सुलह, बीच-बचाव या लोक अदालत के लिए किए गए निर्देश का अंत किसी समझौते में नहीं होता है और पक्षकार वापस न्यायालय में न्याय निर्णयन के लिए आ जाते हैं? यदि संदत्त न्यायालय फीस का पहले ही प्रतिवादी को, जब निर्देश किया गया था, प्रतिदाय किया जा चुका है, तो वाद का न्याय-निर्णयन निःशुल्क हो जाएगा क्योंकि पुनः न्यायालय फीस का संग्रह करने के लिए कोई उपबंध नहीं है। स्पष्टतः ऐसी स्थिति का आशय नहीं रहा होगा। इस पहलू के बारे में श्री न्यायमूर्ति आर. वी. रविन्द्रन द्वारा राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल में दिए गए अपने व्याख्यान में ध्यान आकर्षित किया गया था⁴। केवल निर्देश मात्र पर संदत्त संपूर्ण न्यायालय फीस का प्रतिदाय करने के लिए धारा पर बाध्यता डालने वाले उपबंध का भी वादी द्वारा दुरुपयोग किया जा सकता है। वास्तव में आयोग के अध्यक्ष ने देश के कुछ भागों में जिला न्यायाधीशों से ऐसी रिपोर्टें सुनी हैं। सरकार द्वारा (विधेयक पुरःस्थापित किए जाते समय) या

⁴ ऊपर टिप्पण 2.

विधानमंडल द्वारा यह आशयित नहीं था कि न्यायालय फीस का, यदि एक बार वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश कर दिया जाता है तो, प्रतिदाय कर दिया जाएगा, चाहे उसका परिणाम या वादी अथवा याचिकाकर्ता का आचरण कुछ भी हो । इस संदर्भ में हम सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997 के साथ संलग्न 'खंडों पर टिप्पण' के खंड 35 के प्रति निर्देश कर सकते हैं । वह यथा निम्नलिखित हैं :

“खंड 35- (न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 का संशोधन)

“प्रस्तावित संशोधन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की नई धारा 89 का पारिणामिक है, जिसे विधेयक के खंड 7 द्वारा अंतःस्थापित किए जाने का प्रस्ताव है, जिससे कि पक्षकार को उस दशा में जब विवादित मामले का उस धारा के बाहर निपटारा किया जाता है, न्यायालय फीस के प्रतिदाय का दावा करने में समर्थ बनाया जा सके ।

यह स्पष्ट रूप से विधेयक को पुरःस्थापित करने वाले के आशय को दर्शित करता है । तथापि, धारा में वास्तविक शब्दावली पूर्णतया भिन्न है । यह प्रतीत नहीं होता है कि इस उपबंध को अधिनियमित किए जाने के समय जानबूझकर कोई विचलन किया जाना आशयित था । यह स्पष्ट रूप से प्रारूपकार का मामला है जिसने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो विधेयक में खंड के पीछे आशय के अनुरूप नहीं है । अतः यह आवश्यक है कि न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 के उपबंध का संशोधन किया जाए जिससे कि उसे विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 21 के अनुरूप, उपबंध के अर्थान्वयन और तर्काधार को ध्यान में रखते हुए, बनाया जा सके । यह उल्लेख किया जा सकता है कि 1870 का न्यायालय फीस अधिनियम (केंद्रीय अधिनियमिति) सभी राज्यों में लागू नहीं है । अधिकांशतः सभी राज्यों की अपनी न्यायालय फीस अधिनियमितियां हैं । इस प्रकार धारा 16 कुछ संघ राज्य क्षेत्रों में ही प्रवर्तनीय है । तथापि, कुछ न्यायाधीश, इस वास्तविक स्थिति से अवगत न होते हुए न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 16 का अनुसरण कर रहे हैं, जबकि राज्य अधिनियमिति में कोई समरूप उपबंध नहीं है । जैसा भी हो, न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की धारा 16 को, जहां वह लागू है, यथोचित रूप से संशोधित किए जाने की आवश्यकता है ।

6.4.3 न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की विद्यमान धारा 16 के स्थान पर निम्नलिखित को रखे जाने की आवश्यकता है :

“जहां न्यायालय वाद या अन्य कार्यवाही के पक्षकारों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 में निर्दिष्ट विवाद के निपटारे के ढंगों में से किसी एक के लिए निर्दिष्ट करता है और उसके परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच समझौता या निपटारा हो जाता है, वहां ऐसे मामले में संदत्त न्यायालय फीस का प्रतिदाय किया जाएगा।”

7. सिफारिशें

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89, जो न्यायालय से बाहर विवादों के निपटारे के लिए उपबंध करती है, अनुचित रूप से शब्दांकित है, जैसाकि उच्चतम न्यायालय द्वारा एफकोंस इन्फ्रास्ट्रक्चर बनाम चैरियन वार्क कंस्ट्रक्शन कंपनी (प्रा.) लिमिटेड⁵ के मामले में बताया गया है। अपनाई गई भाषा ने उपबंध को प्रभावी बनाने में कठिनाई उत्पन्न की है। धारा 89 का पैरा 6.2 में दर्शित रूप में पुनः प्रारूपण किया जाना चाहिए। दूसरे संबंधित उपबंधों, अर्थात्, आदेश 10 के नियम 1-क से नियम 1-ग तक का भी पुनःप्रारूपण किए जाने की आवश्यकता है। आदेश 10 में उक्त नियमों का प्रस्तावित संशोधन पैरा 6.3 में उपवर्णित किया गया है। तीसरे न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की धारा 16 का पुनः प्रारूपण किया जाना अपेक्षित है जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वादी को अनआशयित लाभ नहीं मिलता है। प्रस्तावित संशोधन पैरा 6.4.3 में उपवर्णित किया गया है।

हूँ

न्यायमूर्ति पी. वी. रेड्डी

अध्यक्ष

हूँ

न्यायमूर्ति शिव कुमार शर्मा
सदस्य

हूँ

अमरजीत सिंह
सदस्य

हूँ

श्री ब्रह्म अग्रवाल
सदस्य-सचिव

⁵ ऊपर टिप्पण 1.

माध्यस्थम् सुलह अधिनियम की धारा 73(1) और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 का उद्धरण

73. समझौता करार :

(1) जब सुलहकर्ता को यह प्रतीत हो कि किसी समझौते के ऐसे तत्व मौजूद हैं, जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं, तब वह किसी संभावित समझौते के निबंधन तैयार करेगा और उन्हें पक्षकारों को उनके विचार व्यक्त करने के लिए देगा। पक्षकारों के विचार प्राप्त होने के पश्चात् सुलहकर्ता ऐसे विचारों को ध्यान में रखते हुए किसी संभावित समझौते के निबंधन पुनः तैयार कर सकेगा।

(2)

(3)

(4)

89. न्यायालय के बाहर विवादों का निपटारा - (1) जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान हैं, जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं वहां न्यायालय समझौते के निबंधन बनाएगा और उन्हें पक्षकारों को उनकी टीका-टिप्पणी के लिए देगा और पक्षकारों की टीका-टिप्पणी प्राप्त करने के पश्चात् न्यायालय संभव समझौते के निबंधन पुनः बना सकेगा और उन्हें :-

(क) माध्यस्थम्;

(ख) सुलह;

(ग) न्यायिक समझौते जिसके अंतर्गत लोक अदालत के माध्यम से समझौता भी है; या

(घ) बीच बचाव के लिए निर्दिष्ट करेगा।

(2) जहां कोई विवाद-

(क) माध्यस्थता या सुलह के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां माध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो माध्यस्थता या सुलह के लिए कार्यवाहियां उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते के लिए निर्दिष्ट की गई थीं;

(ख) लोक अदालत को निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय उसे विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 20 की उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार लोक अदालत को निर्दिष्ट करेगा और उस अधिनियम के सभी अन्य उपबंध लोक अदालत को इस प्रकार निर्दिष्ट किए गए विवाद के संबंध में लागू होंगे;

(ग) न्यायिक समझौता के लिए निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय उसे किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को निर्दिष्ट करेगा और ऐसी संस्था या व्यक्ति को लोक अदालत समझा जाएगा तथा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) के सभी उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो वह विवाद लोक अदालत को उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन निर्दिष्ट किया गया था;

(घ) बीच बचाव के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए ।

एफकॉन्स इन्फ्रास्ट्रक्चर मामले में निर्णय का पैरा 43 और पैरा 44

“43. हम संहिता की धारा 89 के अधीन किसी न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का निम्नलिखित रूप में संक्षेप कर सकते हैं :

(क) जब अभिवाक् पूरे हो जाते हैं तब विवादकों की विरचना करने के पूर्व न्यायालय पक्षकारों की उपसंज्ञाति के लिए प्रारंभिक सुनवाई नियत करेगा । न्यायालय को मामले के तथ्यों और पक्षकारों के बीच विवाद की प्रकृति से स्वयं को अवगत करना चाहिए ।

(ख) न्यायालय को पहले विचार करना चाहिए कि क्या मामला किसी ऐसे प्रवर्ग के मामले के अधीन आता है जिस पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है और जो किसी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्दिष्ट किए जाने के योग्य नहीं है । यदि वह पाता है कि मामला किसी प्रवर्जित प्रवर्ग के अधीन आता है तो उसे मामले की प्रकृति के प्रति निर्देश करते हुए और यह बताते हुए कि मामला वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं के लिए निर्देश किए जाने के योग्य क्यों नहीं है, एक संक्षिप्त आदेश अभिलिखित करना चाहिए । तत्पश्चात् वह विवादकों की विरचना करने और विचारण करने के लिए अग्रसर होगा ।

(ग) अन्य मामलों में (अर्थात् उन मामलों में जो वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं के लिए निर्दिष्ट किए जा सकते हैं) न्यायालय को पक्षकारों को उन्हें अपने विकल्प का प्रयोग करने में समर्थ बनाने के लिए पांच वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं का चुनाव करने के बारे में समझाना चाहिए ।

(घ) न्यायालय को पहले यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि क्या पक्षकार माध्यस्थम् के लिए इच्छुक है । न्यायालय को पक्षकारों को सूचित करना चाहिए कि माध्यस्थम् किसी चयन किए गए प्राइवेट मंच द्वारा न्याय-निर्णयन की प्रक्रिया है और माध्यस्थम् के लिए निर्देश स्थायी रूप से वाद को न्यायालय के क्षेत्र से बाहर ले जाएगा । पक्षकारों को यह भी सूचित किया

जाना चाहिए कि माध्यस्थम् का खर्च उनके द्वारा वहन किया जाना होगा । केवल उस दशा में जब दोनों पक्षकार माध्यस्थम् के लिए सहमत हो जाते हैं और मध्यस्थ के लिए भी सहमत हो जाते हैं, तब मामला माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

(ड) यदि पक्षकार माध्यस्थम् के लिए सहमत नहीं है तो न्यायालय को यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि क्या पक्षकार ऐसी सुलह के लिए निर्देश किए जाने के लिए सहमत हैं जो माध्यस्थम् सुलह अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगी । यदि सभी पक्षकार सुलह के लिए निर्देश किए जाने के लिए सहमत हैं और सुलहकर्ता (सुलहकर्ताओं) पर सहमत है, तो न्यायालय मामले को माध्यस्थम् सुलह अधिनियम की धारा 64 के अनुसार सुलह के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा ।

(च) यदि पक्षकार माध्यस्थम् और सुलह के लिए सहमत नहीं है, जिसकी सहमति के अभाव में अधिकांश मामलों में होने की संभावना है, तो न्यायालय को पक्षकारों के अधिमानों/ विकल्पों को ध्यान में रखते हुए तीन अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से किसी एक के लिए अर्थात् : (क) लोक अदालत ; (ख) किसी निष्पक्ष तीसरे पक्षकार सुकरकर्ता या बीच-बचाव करने वाले के द्वारा बीच-बचाव ; और (ग) न्यायिक समझौता, जहां कोई न्यायाधीश पक्षकारों की किसी समझौते पर पहुंचने में सहायता करता है, निर्दिष्ट करना चाहिए ।

(छ) यदि मामला सादा है जिसे एकल बैठक में पूरा किया जा सकता है, या किसी ऐसे विषय से संबंधित मामले जहां विधिक सिद्धांत स्पष्ट रूप से तय किए जाते हैं और पक्षकारों के बीच कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है (जैसे मोटर दुर्घटना दावों के मामले में), तो न्यायालय मामले को लोक अदालत को निर्दिष्ट कर सकता है । उस दशा में जहां प्रश्न उलझे हुए हैं या ऐसे मामले जिनमें कई बार बातचीत किया जाना अपेक्षित है, वहां न्यायालय उस मामले को बीच-बचाव के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा । जहां बीच-बचाव की सुविधा उपलब्ध नहीं है या जहां पक्षकार समझौते पर पहुंचने के लिए किसी न्यायाधीश के मार्ग-दर्शन के लिए चयन करते हैं, वहां न्यायालय मामले को समझौते का प्रयास करने के लिए दूसरे न्यायाधीश को निर्दिष्ट कर सकेगा ।

(ज) यदि वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए निर्देश असफल होता है तो वैकल्पिक विवाद समाधान मंच की रिपोर्ट प्राप्त करने पर, न्यायालय वाद की सुनवाई करने के लिए अग्रसर होगा। यदि कोई समझौता हो जाता है तो न्यायालय समझौते की परीक्षा करेगा और उसके निबंधनों के अनुसार, संहिता के आदेश 23 के नियम 3 के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए डिक्री करेगा।

(झ) यदि समझौते के अंतर्गत ऐसे विवाद हैं, जो वाद की विषय-वस्तु नहीं है, तो न्यायालय यह निर्देश दे सकेगा कि वे माध्यस्थ सुलह अधिनियम की धारा 74 द्वारा (यदि वह कोई सुलह समझौता है) या विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 21 द्वारा (यदि वह लोक अदालत द्वारा या बीच-बचाव द्वारा, जिसे लोक अदालत समझा जाता है, कराया गया समझौता है) शासित होंगे। यदि समझौता बीच-बचाव के माध्यम से किया गया है और वह न केवल ऐसे विवादों से संबंधित है, जो वाद की विषय-वस्तु है किंतु वाद के पक्षकारों से भिन्न व्यक्तियों को अंतर्फलित करने वाले अन्य विवादों से भी संबंधित है, तो न्यायालय संहिता के आदेश 23 के नियम 3 में अंतर्निहित सिद्धांत को अपनाएगा। यह आवश्यक होगा क्योंकि बहुत से समझौता करार केवल ऐसे विवादों से ही संबंधित नहीं होते जो ऐसे वाद या कार्यवाही की विषय-वस्तु है जिनमें निर्देश किया गया है किंतु ऐसे अन्य विवादों से भी संबंधित होते हैं, जो वाद की विषय-वस्तु नहीं हैं।

(ज) यदि समझौते का कोई निबंधन प्रकट रूप से अवैध या अप्रवर्तनीय है तो न्यायालय को निष्पादन के बारे में और मुकदमेबाजी तथा विवादों से बचने के लिए उसके पक्षकारों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

44. न्यायालय को संहिता की धारा 89 को प्रभावी बनाते समय निम्नलिखित पारिणामिक पहलुओं को भी ध्यान में रखना चाहिए :

(i) यदि निर्देश माध्यस्थ या सुलह के लिए है तो न्यायालय को यह अभिलिखित करना होगा कि निर्देश पारस्परिक सहमति द्वारा किया गया है। इससे अधिक आदेश पत्र

में कथित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

(ii) यदि निर्देश किसी अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए है तो न्यायालय को संक्षेप में यह अभिलिखित करना चाहिए कि विवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मामला यथास्थिति लोक अदालत या बीच-बचाव या न्यायिक समझौते के लिए निर्दिष्ट किए जाने के योग्य है । निर्देश करने के लिए किसी विस्तृत आदेश की कोई आवश्यकता नहीं है ।

(iii) धारा 89(1) में की इस अपेक्षा से कि न्यायालय को समझौते के निबंधनों को विरचित या पुनः विरचित करना चाहिए केवल यह अभिप्रेत होगा कि न्यायालय को संक्षेप में विवाद की प्रकृति को निर्दिष्ट करना और समुचित वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के बारे में विनिश्चित करना है ।

(iv) यदि मामले का भार साधक न्यायाधीश पक्षकारों की सहायता करता है और यदि समझौता बातचीत असफल हो जाती है, तो उसे पक्षपात और पूर्वाग्रह के भय से बचने के लिए मामले के न्याय-निर्णयन के संबंध में कार्रवाई नहीं करनी चाहिए । अतः यह सलाह योग्य है कि न्यायिक समझौते के लिए प्रस्तावित मामलों को किसी दूसरे न्यायाधीश को निर्दिष्ट किया जाए ।

(v) यदि न्यायालय (माध्यस्थम् से भिन्न) किसी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए मामले को निर्दिष्ट करता है तो उसे वैकल्पिक विवाद समाधान रिपोर्ट के लिए सुनवाई की तारीख तय करके मामले की जानकारी रखनी चाहिए । वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया के लिए आवंटित अवधि सामान्यतया एक सप्ताह से दो मास तक (अपवादोत्पन्न मामलों में जिसका, वैकल्पिक मंच की उपलब्धता, मामले की प्रकृति आदि पर निर्भर करते हुए विस्तार किया जा सकता है) घटाई-बढ़ाई जा सकती है । किसी भी परिस्थिति में न्यायालय को वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया को कार्यवाहियां खींचने का आशय रखने वाले चरित्रहीन मुकदमेबाज के हाथों में साधन नहीं बनने देना चाहिए ।

(vi) सामान्यतया न्यायालय को किसी वैकल्पिक विवाद समाधान मंच के लिए मामला निर्दिष्ट करते समय मामले के मूल अभिलेख को नहीं भेजना चाहिए । उसे सुसंगत कागज-पत्रों की केवल प्रतियां वैकल्पिक विवाद समाधान मंच को उपलब्ध करानी चाहिए । (इस प्रयोजन के लिए जब अभिवचन फाइल किए जाते हैं तब न्यायालय एक अतिरिक्त प्रति फाइल करने पर जोर दे सकता है) । तथापि, यदि मामला न्यायालय से संलग्न ऐसे बीच-बचाव केंद्र को निर्दिष्ट किया जाता है, जो किसी न्यायिक अधिकारी के अनन्य रूप से नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन है तो मूल फाइल, जहां कहीं आवश्यक हो, उपलब्ध कराई जा सकती है ।”
